International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 12
September 2017

कवि पन्त के 'नारी–एक मानवी'– विषयक विचार

धर्मबीर
पीएच.डी. (हिन्दी)
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
पंजीकरण संख्या : 05–BB–544
Email : dslangyan@gmail.com
फोन नं0 : 9050235589

पन्त जी का जन्म अलमोड़ जिले के कौमानी गाँव में 20 मई, 1900 ई0 में हुआ। उनके पिताजी का नाम गंगादत्त था और उनकी माताजी का नाम सरस्वती देवी था। पिता कौसानी के चाय के बगीचे में मैनेजर थे। पन्त जी का विद्यार्थी जीवन कौसानी की पाठशाला में ही आरम्भ हुआ था। उसके बाद 12 वर्ष की अवस्था में अलमोड़ा के गवर्नमेन्ट स्कूल में भर्ती हुए। यहां उन्होंने सबसे पहले अपना नाम बदलने का कार्य किया। इस अवस्था में उन्होंने नेपोलियन का एक चित्र देखा जिससे वे काफी प्रभावित हुए और तभी से केश वर्धन करने लगे। हाईस्कूल की पढ़ाई बनारस के जयनारायण हाईस्कूल में की और सन् 1919 में एस. एस. सी. की परीक्षा पास की। वे बचपन से ही काफी जिज्ञासु तथा कुशाग्र बुद्धि वाले थे। जिससे वे न केवल स्कूली पुस्तक पढ़कर सन्तोष मानते वरन् संस्कृत और हिन्दी की कविताओं का अध्ययन भी किया करते थे। सन् 1919 में इलाहाबाद की क्योर सन्ट्रेल कॉलेज में अध्ययन शुरू किया। 1970 में इनका देहान्त हो गया।

नारी प्रेम सौन्दर्या की प्रतिमा है। उसमें हमें ईश्वरीय प्रेम तथा संसार के सौन्दर्योत्पादक मूल सौन्दर्य के दर्शन सुलभ होते है, यही कारण है कि विद्वानों ने उसे ईश्वर की सर्वोकृष्ट कृति माना है।

संस्कारों और रूचियों के अनुसार मानव ने नारी को उच्च अथवा निम्न स्थानों में रखा है।

जहां तक कविवर पन्त की भावनाओं का प्रश्न है, उन्होंने नारी की सामाजिक सीमाओं के अनुसार 'देवी माँ' सहचरि, प्राण, के रूपों में सम्मान दिया है। विचारक पन्त मानते हैं कि नारी एक सृजन शक्ति है, जिसके बिना संसार का अस्तित्व समाप्त हो जाएगा। संसार के अस्तित्व तथा मानव समाज के संगठन के लिए उसके अत्यधिक महत्व को किसी भी दशा में नकारा नहीं जा सकता है। मूलतः नारी का रूप जननी का है, जो मातृ–सत्ता को प्रभावित एवं सम्मानित करने वाला रूप विविध रूपों में बदल जाता है, जिन्हें पन्त जी ने 'देवी माँ' सहधर्मिणी तथा प्राण–प्रिया के सम्बोधन दिये हैं। अपने मूल रूप में नारी सृजन शक्ति है, जो समान की सीमाओं में बद्ध होकर विविध रूपों में हमारे सम्मुख आती है। पन्त ने इस मूल सृजन–शक्ति को 'देवी माता, सहचरि और प्राण प्रिया' इन चार रूपों में देखा है।[1]

पन्त जी ने नारी स्थिति का उतार–चढ़ाव देखा–सोचा था। युग सन्दर्भ में वह कल्याणी, वेश्या और नारी समझी गयी थी। वैदिक युग की देवी, त्रेता युग की पतिव्रता और द्वापर की परकीया आधुनिक काव्यों में किया है– उनकी दृष्टि में वैदिक युग की नारी सती थी, देवी भी थी और लक्ष्मी भी जो जग जीवन में अवतीर्ण होकर धरती के दुख दूर करती थी। इतना ही नहीं इस युग की नारी विदूषी थी और भक्ति शक्ति तथा सौन्दर्य की प्रतिक थी।

''प्रिय में ही सीता, मैं सावित्री, राधा,

हरती आई जग जीवन पथ की बाधा,

मैं गार्गी, घोषा, सूर्या, आदिति, प्रवीना,

भारती, मालती, मालकी, रचना, नवीना,

मैं दुर्गा लक्ष्मी काली पावन चरणा

मैं भक्ति शक्ति सौन्दर्य माधुरी करूणा।''[2]

पन्त जी की दृष्टि में नारी न केवल सती या देवी ही थी, वह भक्ति और शक्ति भी थी, वह विदूषी एवं प्रवीणा थी। पर यह रूप उन्हें कुछ अधिक नहीं भाया उन्हें उस युग की नारी में भी कुछ कमी महसूस हुई उसकी चेतना में जड़ता दिखाई दी –

''सावित्री राधा–सी नारी

उतरी आभा देही प्यारी,

शिला बनी तापस सुकुमारी

जड़ता बनी चेतना सरसी।''[3]

कवि पन्त की विचारधारा के अनुसार नारी सृष्टि के डर की सांस है, जिसमें उसकी सृजन–शक्ति अर्थात् मातृत्व की प्रतिध्वनि मिलती है। वे उसकी सेवा में अपने हृदय को लगाये रखना चाहते हैं और उसके मातृत्व के प्रति अपने श्रद्धा–भाव को व्यक्त करते हैं। कवि को नारी के सहज, सुन्दर और प्रेममय शरीर में आदर्श माता के समस्त गुण पावनता, ध्यान, शक्ति और सम्मान प्राप्त हो जाते हैं। उनके काव्य की नारी में विश्व स्त्रीत्व है, पूर्ण उदारता का समावेश है और सम्मान प्राप्त हो जाते हैं। उनके काव्य की नारी में विशद स्त्रीत्व है, पूर्ण उदारता का समावेश है और शोभा के ऐश्वर्य का संधान है।

पन्त–काव्य की नारी देवी की समस्त विशेषताओं से युक्त है। उसके स्वर्गीय सौन्दर्य के प्रकाशक तत्व– शृंगार को पन्त जी आदर देते हैं। उसके सौन्दर्य के प्रतीक स्वरूप घने, लहराए रेशमी बालों को पन्त जी ने पर्याप्त सम्मान दे रखा है। नारी के प्रति उनके शब्द हैं–

''घने लहरे रेशम से बाल

धरा है सिर पर मैने देवि

तुम्हारा यह स्वर्गिक शृंगार।''[4]

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 12
September 2017

नारी पुरूष की सहचरी है। उसे उसकी अर्धांगिनी माना गया है। उसके बिना पुरूष अधूरा मानव है। पन्त जी मानव के मानवत्व की पूर्ति उसकी सहचरी के सहधर्मत्व पर मानते हैं। सुख और दुख जीवन के इन दोनों पक्षों में नारी मानव की सहचरी है, वह उसका साथ देती है और उसके काम–काज में हाथ बंटाती है, वह नर की ऐसी सह–धर्मिणी है, जिसे सदैव कार्यरत रहने में सुख–सौभाग्य और मानसिक सम्पन्नता का साक्षात्कार होता रहता है। मानव–जगत् नर–नारी के समान सहयोग पर ही सुविकसित होता है। यदि वे दोनों ही अपने–अपने हितों में अलग–अलग बंट जाएं, तो मानव–जगत के स्वप्नों को पग–पग पर रूकना पड़ेगा। इस विषय में उन्होंने मानव–समाज को निम्नलिखित शब्दों के द्वारा सचेत किया है –

''नर–नारी दो भुवनों में

हों बंटे क्षुद्र जिस जग में

प्राणों के स्वप्न पथिक को

रूकना पड़ता पग–पग में।''[5]

नारी के इस विशुद्ध प्रेम के विषय में पन्त जी ने जिन विचारों की प्रस्तुती की है, उनसे उनका मनोवैज्ञानिक रूप भी हमारे सामने आता है, जो उनके कवित्व को वैशिष्ट्य प्रदान करता है।

पन्त जी ने नारी की नैसर्गिक कामेच्छा को वासना के रूप में नहीं आने दिया है। नारी को वासनाहीन रखना ही उन्हें रूचता है। अतः इसी क्रम में वे कामेच्छा को प्रेमच्छा के रूप में परिवर्तित कर उसे मनोचित बनाने की बात करते हैं। इस हेतु उन्होंने मानवीय प्रवृतियों के संस्कार को आवश्यक माना है। वे एक मनोयानी हैं। अपने विचारों के अनुक्रम ही वे मनुष्य देह को निम्न आकांक्षाओं तक ही सीमित न रखकर उच्च भावभूमि में प्रतिष्ठित करना चाहते हैं, जहां वासना की गन्ध भी नहीं पहुंच सकती है।

यद्यपि नारी चाहे तो नर को वासनावर्त्त में डालकर उसके जीवन को नरकमय बना सकती है, परन्तु वह स्वयं ऐसा नहीं कर सकती है। यह तो नर ही है जो उसे एतदर्थ उत्तेजित करता है। नारी का अपना स्वभाव ऐसा नहीं है। वह अपने मूल रूप में सुकोमल तथा शुद्ध है और वासना से सर्वथा दूर है। वह पवित्र है तथा उसका तन सदाचार की सीमा का निर्धारण करता है। इस संबंध में पन्त जी ने कहा है –

''सदाचार की सीमा उसके तन से है निर्धारित,

पूत योनि वह.....''[6]

नर के साथ उसका स्वाभाविक संबंध है, जिसमें एक दैवी आकर्षण रहता है, वास्तव में नर और नारी इसी स्वाभाविक आकर्षण के कारण एक–दूसरे के प्रति आकृष्ट रहते हैं। उनके इस पावन संबंध में नारी के पक्ष में वासना का लेश भी नहीं रहता है। नारी के प्राण वासना से नहीं, मानव के लिए पावन प्रेम के कारण व्याकुल रहते हैं। पुरूष के साथ उसके प्राण उसी प्रकार का सहज और मधुर मिलन चाहते हैं जिस प्रकार का मिलन सुरभि का समीर से तथा लहर का कारण से होता है।

पन्त जी ने नारी देह को माँ की देह ही समझा है। जिसमें सृजन की शक्ति है जो नवदीप संजोती है। अगर नारीमय देह न होती तो जीवन देही कैसे हो सकता था ? नारी की कृपा से ही जीवन देही बनता है।

''नारी का तन माँ का तन है

जाति वृद्धि के लिए विनिर्मित

जीवन कैसे देही होता,

जो नारीम्य देह न होती ?''[7]

कहीं–कहीं पंत जी नारी के प्रति इतने श्रद्धावान हो जाते हैं कि नारी के तन को मन्दिर की उपमा दे देते हैं। जिसमें सुषमा प्रतिमा स्थापित रहती है। भारतीय समाज में विधवा

और पतिता कलंकिनी समझी जाती है। नारी के इस रूप को लोग नाक भौं सिकोड़कर देखते हैं। विधवा को देखना अपशकुन मानते हैं और पतिता की तो इतनी निंदा होती है कि बेचारी किसी से आँख भी नहीं मिला सकती। पड़ोसी और घर की नौकरानियाँ भी उससे आँख चुराकर भागती रहती हैं। लेकिन पंत जी मानते हैं कि मनुष्य के मन से पवित्र रहे तो वह पवित्र ही है। रज देह तो सदा से अपवित्र ही रही है। मैं ऐसी नारी को कलंकित न रहने दूंगा– उसका उद्धार करूंगा। सम्भवतः यह नारी उद्धार की बात उनके लोकायतन से स्पष्ट मुखरित हुई है और उन्होंनें स्वयं ऐसी संस्था भी खोली थी जहां ''लोकायतन'' का वातावरण हो पतिता नारी समाज के सामने प्रस्तुत होती है तो समाज उसे कैसे देखता है– कवि के शब्दों में –

''जिसका रही सहमी कोने में

अबला साँसों की–सी ढ़ेरी

कोस रही घेरे पड़ोसिने,

आँख चुराती घर की चेरी।''[8]

''भारत की नारी प्रताड़ित हो रही है। वह हमेशा अपने आपको छिपाती फिरती है। वह पुरूषों से कटती रहती है। ऐसी नारी को पंत जी देख नहीं पाते उन्हें लगता है कि उसका मन हीन ग्रन्थि से कुण्ठित हो गया है।''[9] ऐसी नारी को आह्वान देते हुए कवि उसे सोये हुए प्राणों की सोयी हुई चेतना को जागते हुए कहते हैं कि अब तो तूझे घर से बाहर निकलना ही होगा। तुझे नयी मनुष्य सभ्यता का विकास करना है। अब तुझे इस देश में नई भूमिका निभानी है –

''नयी भूमिका तुम्हे निभानी

जन–भू मग में,

मनुज सभ्यता नव विकास के

पथ पर जग में।''[10]

कवि पंत को दुख है कि समाज की कटुता से नारी की स्थिति बहुत दयनीय है। मानव–समाज की वास्तविकता का ज्ञान प्राप्त करने पर कवि को प्रतीत हुआ है कि उसमें कटुता, दीनता और कुरूपता का साम्राज्य छाया हुआ है, जिसकी चोट नारी वर्ग को भी लगी है। नारी को आदर्श जीवन–सन्दर्भों पर देखने से पंत जी को विदित हुआ कि वह उपेक्षा, व्यक्तित्वविहीनता और दीनता की ठोकरों से पीड़ित हुई है। वह वास्तविकता की कटुता से परिपूर्ण 'नर की छाया' मात्र है।[11] समाज में उसे अपने शरीर को अपनी आँखों से देखने का भी अधिकार प्राप्त नहीं है। वह तो अपने को पुरूष की आँखों में देखती है। पुरूष वर्ग को प्रसन्न रखना ही उसे अपना धर्म प्रतीत होता है। उसे उसकी भावनाओं के अनुरूप चलना पड़ता है। अपनी चाल से तो वह शंकित रहती है, क्योंकि मानव समाज ने उसके समक्ष ऐसी परिस्थितियाँ खड़ी कर रखी हैं, जिनमें उसे अपने ऊपर विश्वास ही नहीं रहता है। पंत जी का कथन है –

''वह नर की छाया नारी।

चिर नमित नयन, पद विजड़ित,

वह चकित, भीत हिरनी सी

निज चरण–चाप से शंकित।''[12]

कवि ने समाज को देखकर पाया है कि नारी को उसमें सम्मान का स्थान नहीं मिल पाया है। उसे तो घर के कोने में दीपशिखा की तरह कम्पित रहना है। उसका कम्पन मानव–जग से भय के कारण है। उसके जीवन को मानव के हाथों के द्वारा पशुवत बना दिया गया है। उसे युग–युग के पशु का जीवन बिताना पड़ा है। इतना ही नहीं, मानव ने उसे अपनी काम–कारा की बिन्दनी बना रखा है। यह विकसनशील समाज के लिए कलंक की बात है। नारी की ऐसी दयनीय स्थिति के बारे में पन्त जी कहते हैं –

''करती वह जीवन यापन/युग–युग से पशु सी पालित

बन्दिनी काम–कारा की/आदर्श नीति परिचालित।''[13]

पंत जी का आग्रह है कि विगत युग की बर्बर कारा से नारी को मुक्त कर दिया जाए। बर्बर कारा से उनका मतलब इन–सामाजिक बन्धनों से है, जिनमें बंधी हुई नारी का अपना कोई स्वतंत्र व्यक्तित्व नहीं होता है। पंत को आशा है कि बन्धनमुक्त होकर नारी अपने व्यक्तित्व का विकास करते हुए मानव समाज के कल्याण में सहायक होगी। मानव के द्वारा नारी को बर्बर कारा में रखा जाना कवि को अशोभयनीय लगता है। उनका कथन है –

''मुक्त करो नारी को मानव

चिरबन्दिनि नारी को,

युवा–युग की बर्बर कारा से

जननी सखी प्यारी को''[14]

पंत जी चाहते हैं कि नारी के स्वतंत्र व्यक्तित्व के निर्माण के लिए आत्मा के विकास के साथ ही उसे मन से भी पवित्र करना होगा। शरीर के कुछ बन्धनों को तोड़कर उसे प्रेम के बन्धन से बान्धना उसके हित में होगा। पंत जी के अनुसार आज की नारी के युगों पुराने बन्धन खोलकर प्रेम के बन्धनों से उसे बांधना है। इसके लिए वे समाज से आग्रह करते हैं–

''खोलो, हे मेखला युगों की

कटि प्रदेश से तन से।

अमर प्रेम हो बंधन उसका

वह पवित्र हो मन से।''[15]

पंत जी ने नारी को सौन्दर्य को केवल मानव–जगत् को लुभाने वाला ही न मानकर उसमें एक ऐसी अपरिमित शक्ति मानी है, जो मानव–जीवन को शक्ति तथा गति देती है।

उसका सौन्दर्य आलोक उसके अन्तर्गता को प्रकाशित कर उसे मानव–सेवा के योग्य बना देता है। अपने अन्तर्जगत के प्रकाश में वह समस्त द्वंद्वात्मकता को भूल जाती है। और मानव जग के हित में अपने हृदय को अर्पित कर देती है। मानव सेवा में रत रहने वाली ऐसी नारी पंत जी को बहुत प्रिय है। वे उसकी प्रशंसा करते हैं–

''नारी की संज्ञा भुला, नरों के संग बैठ,

चिर जन्म सुहृउ सी जन हृदयों से सहज बैठ,

जो बंटा रही तुम जग जीवन का काम काज,

तुम प्रिय हो मुझे न छूती तुमको काम लाज।[16]

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि पंत जी की नारी विषयक भावना आदरपूर्ण रही है। वे उसकी महता को स्वीकार करते हैं और उसे मात्र भोग्या समझने वाले लोगों पर कटु व्यंग्य करते हैं। पन्त जी के लिए नारी पूज्य रही है। कहीं–कहीं वे नारी समस्याओं पर चिन्तन भी करते हैं। इसलिए वे कहते हैं कि ''आज नारी तन के स्तर पर श्रृंगार भावना का मूल्य आंकना अनुचित होगा, उसे धराजीवन के स्तर पर देखना स्वाभाविक होगा। गृहस्थ–जीवन के मूल्यों के रूप में श्रृंगार भावना का आंशिक ही विकास संभव हो सका है।[17] वे स्त्री–पुरूष के युग्म जीवन को नवीन अनुराग, सौन्दर्य तथा आनन्द से मण्डित करना चाहते हैं।

मानव समाज में नारी की स्थिति उल्लेखनीय है। मानव–कल्याण की दिशा में वह सदैव अग्रणी रहती है। अतः मानवतावाद के पोषक नारी की महत्ता को निर्विवाद स्वीकार करते हैं।

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 12
September 2017

सन्दर्भ–सूची :–

1. सुमित्रानन्दन पंत, काव्य और दर्शन, नीरज व सुधा सक्सेना, पृ0 11
2. पंत ग्रंथावली, भाग 2 स्वर्णधूलि, मानसी, ले, पंत, पृ0 342
3. पंत ग्रंथावली, भाग 2 स्वर्णधूलि, जन्मभूमि, ले. पंत, पृ0 320
4. पल्लिविनी : नारी रूप, पृ0 137
5. लोकायतन, संस्कृति द्वारा, पृ0 196
6. ग्राम्या, नारी, पृ0 85
7. पन्त ग्रन्थावली, भाग–2, स्वर्ण किरण, ले. पन्त, पृ0 201
8. पन्त ग्रन्थावली, भाग–2, स्वर्णधूलि पतिता, ले. पंत, पृ0330
9. पन्त ग्रन्थावली, भाग–4, किरण वीण उद्‌बोधन, ले. पंत, पृ0 55
10. पन्त ग्रन्थावली, भाग–7, समाधिता, ले. पंत, पृ0 185
11. युग वाणी, नर की छाया, पृ0 66
12. वहीं
13. युगवाणी, नीर, पृ0 65
14. सुमित्रानन्दन पंत, काव्य, कला, दर्शन, शचीरानी, पृ0 90
15. चित्रांगदा, नारी जग, पृ0 101
16. सुमित्रानन्दन पंत, कला, काव्य और दर्शन, नीरज सुधा, पृ0 68
17. पंत ग्रंथावली, भाग–7, शिल्प और दर्शन श्रृंगार और अध्यात्म, ले. पंत, पृ0 705